International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 09 September- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

बौद्ध आचारशास्त्र में पर्यावरणीय नीति : व्यक्ति और विश्व के मध्य

Dr Sipu Jayswal, Associate Professor
Janki Devi Memorial College, University of Delhi
Sir Ganga Ram Hospital Marg, Old Rajinder Nagar, New Delhi-110060

भौतिक उन्नति ने जिन समस्याओं या पर्यावरणीय असंतुलन को उत्पन्न किया है, उनसे सम्पूर्ण विश्व में मानव त्रस्त है। संचार तथा यातायात के आधुनिक व तीव्र साधनों से जितनी ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति हुई है, उतनी ही तेजी से यह भी प्रमाणित हुआ है कि किस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति, समाज, देश, व प्रकृति एक दूसरे से संबंधित हैं? और एक दूसरे पर उसका कितना व्यापक प्रभाव है? पर्यावरणीय समस्या का स्वरूप किसी देश, समाज या भूखण्ड में चाहे भिन्न–भिन्न हो परन्तु उसके मूल में कारण वही है जो व्यक्ति से लेकर प्रकृति तक के संबंधों के संदर्भ में ह। अतः व्यक्ति एवं विश्व के संदर्भ में पर्यावरण की नैतिक दृष्टि से व्याख्या में मुख्यतः विश्व स्तर पर समस्या के विभिन्न स्वरूप को ही स्पष्ट करना शेष है। समस्या का स्वरूप स्पष्ट हो जाने पर, चूंकि 'कारणों' की चर्चा पहले की जा चुकी है, इसलिए पूर्व चर्चित निदान को विश्व के संदभ में कैसे लाया जा सकता है, इस पर विचार यहाँ अपेक्षित हैं। पूरे विश्व के संदर्भ में पर्यावरण के संतुलन के लिए चर्चा का उपयोग वैसे ही हो सकता है, जैसे व्यक्ति एवं व्यक्ति के संदर्भ में, व्यक्ति एवं समाज के संदर्भ में और व्यक्ति एवं प्रकृति के संदर्भ में। क्योंकि ये ऐसे सार्वभौमिक तथ्य हैं, जो किसी विशेष समाज व परिस्थिति में ही उपयोगी नहीं होते। बल्कि पूरे विश्व के संदर्भ में सार्वभौमिक प्रासंगिकता रखते हैं। क्योंकि समस्या के मूल में एक ही कारण मानव का अकुशल कर्म है। व्यक्ति की बढ़ती आकांक्षा, भौतिकवादी मानदण्डों के अनुसार जीवनयापन ही उपभोगतावादी विश्व का निर्माण कर रहा है।

विश्व आज जिस प्रगति की ओर बढ़ रहा है, वहाँ भौतिकवादी मान्यताओं का ऐसा विस्तार हुआ है, कि मनुष्य की प्रगति की धारणा में 'मानव धर्म' अथवा अन्य प्राणी जगत् का कोई महत्व नहीं रह गया है। प्रगति की यह परिभाषा यांत्रिकता, प्रभुता और उत्पादन में वृद्धि के अर्थ तक सीमित रह गई है। प्रगति की इस संकीर्ण अवधारणा ने ही विश्व के सम्मुख अनेक नई समस्यायें उत्पन्न कर दी हैं। महाविनाशक हथियारों ने मनुष्य के अस्तित्व को संकट में डाल दिया है। पृथ्वी का पर्यावरण जीवन की गुणवत्ता बनाये रखने में सक्षम नहीं रह गया है। इसके मूल में मनुष्य का अपना अशुभ कर्म है, जो तात्कालिक उपयोगिता एवं भौतिक प्रगति की आकांक्षा द्वारा निर्धारित हो रहे हैं। कर्म की इस अवधारणा ने मानव के अतिरिक्त, जितने भी मानवेत्तर घटक हैं, उनके मध्य स्थापित संतुलन एवं सामंजस्य को नष्ट कर दिया है। जबकि विश्व की उन्नत तभी हो सकती है, जब विश्व के सभी अस्तित्वों में सामंजस्य स्थापित हो, क्योंकि इस जगत् में प्रकृति का हर जीवन एक दूसरे से संबंधित है। प्रकृति में ऐसी कोई चीज नहीं है जो दूसरी चीज से संबंध न रखती हो। इस संबंध के कारण ही प्रकृति के हर घटक का एक दूसरे के साथ सामंजस्य होना अनिवार्य है। क्योंकि जैसे ही यह सामंजस्य टूटेगा, प्रकृति का साम्य या संतुलन भंग होने लगेगा, जिसके प्रभाव से कोई भी वंचित नहीं रह पायेगा । इस विकट स्थिति को लाने वाली मनुष्य की चार ही वृत्तियाँ उत्तरदायी है ।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 09 September- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

(1) *संग्रह* (लोभ) (2) *आवेश* (क्रोध) (3) *गर्व* (अभिमान) (4) *माया* (छिपाना) । यह चारों अलग–अलग रूप में जीवन में विषमता, संघर्ष, अशान्ति के कारण बनते हैं। संग्रह की मनोवृत्ति के कारण शोषण, अप्रमाणिकता, स्वार्थपूर्ण व्यवहार, क्रूर व्यवहार, विश्वासघात आदि बढ़ते हैं। आवेश की मनोवृत्ति के कारण संघर्ष और युद्ध का जन्म होता है। वर्तमान समय में अति विकसित और समृद्ध राष्ट्रों में, जो अपने अधिकार क्षेत्र को विस्तृत करने की प्रवृत्ति है वह साम्राज्य वृद्धि की वृत्ति है। उसके मूल में भी अपने राष्ट्रीय अहं की पुष्टि का प्रयत्न है। जब व्यक्ति के मन में अधिपत्य की वृत्ति या शासन की भावना जागृत होती है, तो वह दूसरे के अधिकारों का हनन करता है। उसे अपने प्रभाव क्षेत्र में रखने का प्रयास करता है। मानव की इसी अकुशल वृत्तियों के कारण विश्व को अनेक भयंकर दुष्परिणामों से गुजरना पड़ रहा है। इसे कुछ उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। जैसे दो विश्वयुद्ध हुए हैं तथा परमाणु शस्त्रों का विकास हुआ है, उसे मानव के आवेश व गर्व का, पर्यावरण के संदर्भ में दुष्परिणाम कहा जा सकता है।

आज भी मूल युद्ध स्थल से हजारों मील दूर भी इन घातक शस्त्रों के प्रयोग का दुष्परिणाम होता है। हजारों मील की दूर पर भी एक माँ के दूध में 'स्ट्राशियम – 90' (Strontiun– 90) मिला जो परमाणु शस्त्र की विषाक्त गैस का परिणाम था। यह इस बात का प्रतीक है कि कैसे एक घटना दूसरी घटना से सम्बद्ध होती है? इस जटिल पारिस्थितिकीय तंत्र में एक जगह पर कुछ उपयोग करने पर दुनिया के किसी कोने में हजारों मील की दूरी पर भी उसका प्रभाव कई वर्षों तक मिलता है। दूसरा उदाहरण 'डी.डी.टी.' का है। यह उदाहरण सिद्ध करता है कि, कैसे हमारी बनायी गई चीजें जीवन को प्रभावित करती हैं।"[1]

(1) पहली समस्या 'क्लोन'[2] (Clone) का उदाहरण है, जिसका निर्माण मनुष्य की अपने अस्तित्व को बनाये रखने की आकांक्षा, तथा इस भय से हुआ है, कि जिस तेजी से वह पारिस्थितिकीय तंत्र को असंतुलित कर रहा है, उसमें भविष्य में शायद वह पुनः आइन्सटीन, अरस्तू जैसे महान व्यक्तित्व को पुनः नहीं पा सकेगा। इसी भय से विज्ञान के माध्यम से मानव के प्रतिरूप बनाने की तकनीकी विकसित की। जिसे विज्ञान की भाषा में हम 'क्लोन' (Clone) कहते हैं। इस शोध पर अमेरिका जैसे विकसित देश को भी रोक लगानी पड़ी। क्योंकि इससे कई ऐसी नैतिक समस्यायें उत्पन्न हो गईं, जो सामाजिक पर्यावरण को नुकसान पहुँचा रही थीं। जैसे– (1) जो प्रतिरूप निर्मित होता था, वह बहुत कम आयु का होता था, क्योंकि उसकी आयु की गणना वहीं से प्रारंभ होती है, जितनी आयु के व्यक्ति की कोशिका से वह निर्मित होता है। यहाँ प्रश्न यह है कि उस नये जीव को भी अपनी संपूर्ण आयु जीने का पूर्ण अधिकार है।

[1]It is dark outside, Western Buddhism from the Enlightment to the global crisis. The rise of Environmentalism, Peter Timmerman, Buddhims & Ecology (ed.) Martine Batchelor and Kerry Brown, Delhi : Motilal Banarasidass Pub., 1994, p.71.

[2]क्लोन – नाभिकीय प्रतिस्थापन तकनीकी (Nuclear Transfer Technology) को 'क्लोन' कहते हैं। इसमें किसी प्राणी से एक कोशिका ली जाती है, उसके नाभिक को अलग कर लिया जाता है। पुनः किसी दूसरे प्राणी के भी अण्डाणु कोशिका के नाभिक को अलग कर बचे हुए ढ़ाचें में पहले नाभिक को विद्युत के झटके से फ्यूज कर संलायित किया जाता फिर इसे तीसरे प्राणी के गर्भ में प्रवेश करा दिया जाता है, जहाँ पर कोशिका का विकास होकर बच्चे का जन्म होता है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 09 September- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

(2) दूसरी समस्या उस नये जीव के माता पिता के निर्धारण की है। यह तय करना संभव नहीं है कि, वास्तव में किस व्यक्ति की संतति वह मानी जाये, क्योंकि उसके जन्म में किन–किन लोगों की भूमिका होती है, इसका निर्धारण करना कठिन है।

(3) तीसरी समस्या यह है कि, उस नये जीव को विकसित होने के लिए वह स्वाभाविक अवसर नहीं प्राप्त होता। जो सामान्य रूप से प्राकृतिक नियमों के अनुसार जन्म लिये बच्चे के मिलता है। इससे उसके मानवीय अधिकारों का हनन होता है। साथ ही वह प्रतिरूप कई स्वाभाविक मानवीय लक्षणों से वंचित रह जाता है। क्योंकि अन्य बच्चों की तरह प्राकृतिक व सामाजिक वातावरण उसके विकास में प्राप्त नहीं हो पाता है।

इस तकनीकी के असफल होने का मुख्य कारण पर्यावरण ही है, क्योंकि जिस महान् व्यक्ति का प्रतिरूप बनाया गया है, उसको महान बनाने वाली वह सभी परिस्थितियाँ जो पहले विद्यमान थीं, वह उस प्रतिरूप के विकसित होने के क्रम में उपलब्ध नहीं हो पाती। जिससे वह नया प्रतिरूप न स्वयं की स्वाभाविकता को प्राप्त कर पाता है और न ही उस व्यक्ति के संपूर्ण लक्षणों को जिसका वह प्रतिरूप है। यह उसके नैतिक मूल्यांकन की सबसे बड़ी नैतिक समस्या है जिसका कोई नैतिक आधार नहीं है।

(4) चौथा उदाहरण 'स्टेम कोशिका'[3] (Stem cell) के निर्माण का है। इस तकनीकी को कृत्रिम अंग–प्रत्यंग बनाने के लिए विकसित किया गया है। इसने भी कई प्रश्न मानव जीवन की सुरक्षा से संबंधित खड़े कर दिये हैं। एक तरफ तो हम अपने जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए बड़े–बड़े प्रयोग करने से नहीं हिचकते, तो दूसरी तरफ अपने ही हाथों से छोटे–छोटे कृत्रिम अंगों को प्राप्त करने के लिए, कई अजन्में शिशुओं की गर्भ में ही हत्या कर देते हैं। कृत्रिम अंग लगाकर व्यक्ति तो संतुलित हो जाता है, परन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति में हम प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर नैतिक व सामाजिक पर्यावरण को असंतुलित कर देते हैं।

इसी प्रकार विज्ञान की प्रगति ने प्रकृति के स्वाभाविक विकास को भी, अवरुद्ध कर दिया है। जिसे अनुवांशकीय प्रोद्योगिकी (Genetic Engineering) के माध्यम से समझा जा सकता है। आज इस प्रौद्योगिकी के माध्यम स "मछली के 'जीन' को स्ट्राबेरी के पेड़ के जीन में डाला जा रहा है, ताकि स्ट्राबेरी का पौधा ठंडे प्रदेशों में जीवित रह सके।"[4] लेकिन इससे एक यक्ष प्रश्न खड़ा हो गया है कि, इस तरह के संकरित (Hybrid) स्ट्राबेरी के पौधे को शाकाहारी की श्रेणी में रखा जाय या मांसाहारी की श्रेणी में? इस प्रकार मानव के साथ–साथ प्रकृति की गुणवत्ता को भी आज का विश्वस्तरीय प्रयोग चुनौती दे रहा है। जो न पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान कर सकता है और न ही हमारे नैतिक मूल्यों की रक्षा कर सकता है। जबकि पेड़ पौधे किसी एक देश, संस्कृति, समाज के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं होते, बल्कि यह हमारी परम्पराओं व सांस्कृतिक प्रगति के स्रोत हैं। 'वृक्ष' पूरे संसार के लिए एक सा महत्व रखते हैं। विश्व में अनेक महान व्यक्तियों ने वृक्ष के माध्यम से ही ज्ञान प्राप्त किया, जैसे– गौतम बुद्ध ने पीपल के पेड़ के नीचे ज्ञान प्राप्त किया। यूरोपीय शासक भी अपनी शक्ति के प्रतीक के रूप में

[3]स्टेमसेल (Stem cell) इसमें गर्भ से कोशिकाओं को लेकर प्रयोगशाला में शरीर के विभिन्न कृत्रिम अंगों को विकसित किया जाता है।
[4]मछली कम तापमान पर भी जीवित रह सकती है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 09 September- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

'ओक' वृक्ष की पत्तियाँ उपयोग किया करते थे। अमेरिका के लोग भी अपने स्वतंत्रता आंदोलन के समय 'पोलर' वृक्ष को स्वतंत्रता के प्रतीक के रूप में लगाते थे। इसी प्रकार तुलसी, नीम और बेल भी औषधिक गुण रखने के साथ–साथ आध्यात्मिक भाव भी प्रकट करते हैं।

वृक्ष जो धरती में रोपा जाता है, वह आकाश की ओर बढ़ता है और पृथ्वी से पानी लेकर अपने पत्तों के माध्यम से, बाह्य वातावरण में वाष्प के माध्यम से छोड़ता है। अर्थात् एक वृक्ष तीन अलग–अलग जगत् पृथ्वी, आकाश और जल के मध्य सामाजस्य को प्रवृत्ति प्रकट करता है। यह माना जाता है कि कोई भी पेड़ जितना पृथ्वी की सतह से ऊपर की ओर बढ़ता है, उतना ही वह पृथ्वी की सतह से नीचे की ओर भी बढ़ता है। अर्थात् यदि वह आकाश की ओर एक शिखर रखता है, तो धरती के अंदर भी उसका वैसा ही एक भाग होता है। यह दर्शाता है कि इसी प्रकार जो अदृश्य संसार है, उसका प्रतिबिम्ब दृ श्य संसार में दिखता है।

जब एक ऊँचे वृक्ष की शाखा फल से लद जाती हैं, तो वह अपने आप पृथ्वी की ओर झुक आता है यह समृद्धि और नम्रता के मध्य संबंध का एक बहुत अच्छा उदाहरण है। 'देना' वृक्ष की मूल प्रवृत्ति होती है यह एक प्राकृतिक वातानुकूलित यंत्र की भाँति व्यवहार करता है। एक वृक्ष अपने चारों तरफ से गर्मी को अवशोषित करता है दूसरों को छाया प्रदान करता है और जीवनदायिनी ऑक्सीजन छोड़ता है। बदले में कार्बन डाइऑक्साइड लेकर वातावरण को स्वस्थ रखता है। यह पशुआ को भोजन प्रदान करता है। यहाँ तक कि वृक्ष नष्ट होने के बाद भी लकड़ी के रूप में उपयोग होता है। यह एक पूर्ण त्यागमय जीवन का प्रतीक है। इस प्रकार वृक्ष एक 'जीवन–दर्शन' है। आज मानव प्राकृतिक जंगलों की जगह कंक्रीट के जंगल तैयार कर रहा है। पेड़ हमारे लिए बहुत कुछ करत हैं इसलिए यह समय है कि हम एक वृक्ष लगाकर या एक वृक्ष रक्षा करने का प्रण लें।"[5]

उपरोक्त लेख और उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि मनुष्य की बढ़ती आकांक्षा उसका अभिमान, उसका क्रोध व लोभ किस प्रकार तरह–तरह से प्राकृतिक गतिविधियों में हस्तक्षेप कर, प्रकृति की स्वाभाविक गति को अवरुद्ध कर रहा हैं? जिससे न सिर्फ प्राकृतिक बल्कि सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण भी असंतुलित हो रहा है। मनुष्य की तृष्णा आज सिर्फ उसकी क्षुधापूर्ति तक सीमित नहीं रह गई है। वस्त्र, आवास और भोजन की तृप्ति तो आज फिर भी, किसी न किसी विधि से प्रकृति का दोहन कर हो जाती है, परन्तु मानव का दर्प, अहंकार इससे भी संतुष्ट नहीं होता। वह अपना प्रभुत्व पूरे संसार पर रखना चाहता है। संसार की सीमा कम पड़ने पर प्रकृति, आकाश तथा अंतरिक्ष तक, अपने प्रभुत्व को बढ़ाने का प्रयत्न करने में मानव गर्व का प्रतीक है। प्रकृति पर प्रभुत्व रखने के प्रयास में मानव ने आज पूरे विश्व को संकट में डाल दिया है। यह ठीक है कि प्रकृति, पृथ्वी, आकाश व अंतरिक्ष सिर्फ मानव की क्षुधा वस्तु और आवास के लिए ही नहीं है, बल्कि उसकी जिज्ञासा से, 'ज्ञान' प्राप्ति का भी विषय है। परन्तु मनुष्य ज्ञान के इस साधन को कब अपने अहं की सिद्धि का साधन बना लेता है ? उसे स्वयं भी पता नहीं चलता।

[5]The Times of India : The Basic Nature of Tree is to give spontaneously, P. Vyankatesh, New Delhi. 22.06.2005.

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 09 September- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

मनुष्य के हर कर्म के पीछे उसकी चेतना व मनोवृत्ति काम करती है, जिससे प्रेरित होकर वह कोई कर्म करता है। यही 'मनोवृत्ति' कर्म को शुभ या अशुभ बनाती है । इसलिए बौद्ध आचारशास्त्र में उस 'चित्त' को ही 'कुशल' बनाने की शिक्षा दी गई है। बौद्ध आचार शास्त्र में क्रोध, द्वेष, लोभ तथा स्नेह आदि चित्त के मैल हैं। जिन्हें कभी भी छोटा नहीं समझना चाहिए।

क्रोध, द्वेष, लोभ आदि का दोष बताने के लिए उदाहरण के रूप में 'कान्ह जातक'[6] को लिया जा सकता है। इस कथा में–"बोधिसत्त्व ने वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य में अस्सी करोड़ धन वाले ब्राह्मण के घर में जन्म लिया। बड़े होकर उन्हें माता–पिता का ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। एक दिन रत्न भंडारों को देख स्वर्ण पट्टी मँगवाई, जिस पर उन रिश्तेदारों क नाम लिखे गये थे, जिन्होंने इस रत्न भंडार को बढ़ाने में योगदान दिया था। बोधिसत्त्व सोचने लगे कि जिन्होंने धन पैदा किया, वे दिखाई नहीं देते, केवल धन ही दिखाई देता है। एक भी व्यक्ति धन लेकर नहीं गया। "धन की गठरी बाँधकर नहीं ले जाई जा सकती, अतः इसका दान देना ही उचित है। उसी प्रकार संसार में बहुत से रोगियों को देखकर इस शरीर का शीलवान होना ही श्रेष्ठ है।" आदि अनित्यता की अनुभूति कर बोधिसत्त्व ने प्रब्रज्या ले ली और शीलधर्म में प्रतिष्ठित हुए । उनके शील पालन से इन्द्र का आसन तप्त हुआ। इन्द्र ने उनकी परीक्षा लेने हेतु उनसे वर माँगने को कहा तो बोधिसत्त्व ने इन्द्र के आशय को जान, उनसे सर्वदा अक्रोधी, अद्वेषी और निर्लोभी होने का वर माँगा। तब इन्द्र के पूछने पर कि क्रोध, द्वेष, लोभ या स्नेह में क्या दोष है? बोधिसत्त्व ने क्रमशः इनके दोषों को बताते हुए कहा कि ये सभो दोष थोड़े से बहुत अधिक हो जाते हैं। 'क्रोध', 'अक्षमा' से उत्पन्न होता और बढ़ता है तथा दुःख का कारण बनता है। 'द्वेष' होने से पहले तो कठोर वाणी निकलती है, फिर खींचना, घसीटना आदि होता है, फिर हाथ से पीटना, फिर दण्ड देना होता है, फिर शस्त्र प्रहार होता है। 'द्वेष' ही 'क्रोध' का कारण है। डाका, दुस्साहस, ठगी, बंचना सब लोभ में दिखाई देता है। यह प्रश्नोत्तर सुन इन्द्र ने प्रसन्न हो बोधिसत्त्व को पुनः वर माँगने को कहा। बोधिसत्त्व ने सदैव अरोग्य रहने तथा अपने द्वारा किसी भी प्राणी को शरीर, मन एवं वचन से काई कष्ट न पहुँचे, इसका वर माँगा। " इस प्रकार जातक के द्वारा बौद्ध आचारशास्त्र में क्रोधादि में दोष को बताया गया है। ये दोष आज विश्व में अपनी चरम सीमा में दिखाई पड़ते हैं। जिसका परिणाम कई ऐसे कारक के रूप में मिलता है, जो पर्यावरण को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से असंतुलित करते हैं।

'पानीय जातक'[7] में भी बोधिसव ने 'चित्त' क्लेश को अर्थात् चित्त के मैल को कभी छोटा न समझने का उपदेश दिया है। यथा चोरी, झठ, प्राणी हिंसा, मद्यपान आदि ऐसे कर्म हैं जो व्यक्ति कामासक्ति से प्रेरित होकर करता है और बाद में पश्चाताप करता है। अतः इसके दमन का उपदेश दिया गया है, जिससे काम–वितर्क उत्पन्न ही न हो । जातकों के माध्यम से बोधिसत्त्व ने न सिर्फ चित्त के इन दोषों का वर्णन किया है, बल्कि व्यक्ति के लिए कौन सा कर्म ' मांगलिक' है अर्थात् 'शुभ' है, इसका भी वर्णन किया है। 'महामंगल जातक को उदाहरण के रूप में लेकर स्पष्ट किया है। 'महामंगल जातक'[8] में बोधिसत्त्व ने अपने शिष्य द्वारा पूछे जाने पर कि " प्रार्थना करते समय क्या जप करें, कौन सा वेद पढ़े, कौन सा शास्त्र पढ़ें, अथवा क्या करें, जिनके करने से मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में कल्याण सहित सुरक्षित रहे?"

[6] *जातक,* (चतुर्थ खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 440, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1951, पृ. 208.
[7] *जातक,* (चतुर्थ खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 459, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1951, पृ. 314.
[8] *जातक,* (चतुर्थ खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 453, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1951, पृ. 275.

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 09 September- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

इस प्रकार प्रधान शिष्य के मंगल प्रश्न पूछने पर बोधिसत्त्व ने देव– मनुष्यों के संदेह को दूर करते हुए आठ मंगल गुणों का वर्णन किया है जो इस प्रकार ह–

(1) सभी देवता, पितर, रेंगने वाले जानवर तथा सभी अन्य प्राणी जिसकी मैत्री – भावना द्वारा नित्य पूजित होते हैं, वह प्राणियों के प्रति 'मैत्री – भावना' मंगल है। इस मंगल से समस्त प्राणियों की 'रक्षा' होती है।

(2) जो सारे लोक के प्रति 'नम्र' है, जो सभी पुरुष और बच्चों के भी दुष्ट वचनों को सह लेता है, जो किसी से झगड़ा नहीं करता उसकी यह 'सहनशीलता' उसका मंगल है। इससे वह रक्षित होता है।

(3) जो विद्या, कुल, धन या जन्म के अभिमान से मित्रों का अनादर नहीं करता, जो प्रज्ञावान है, जो समय पड़ने पर स्मृतिमान है, उसका यह मित्रों का अनादर न करना 'मंङ्गल' है। इसी से वह रक्षित होता है।

(4) जिस अनिन्दित (पुरुष) के मित्र शान्त होते हैं, विश्वासी होते हैं, जो मित्रद्रोही नहीं होता और धन को बराबर बाँटने वाला होता है, उसका मित्रों के प्रति यह भाव 'मंगल' है। इसी से उसकी रक्षा होती है।

(5) जिसकी भार्या समानआयुवाली है, एक मन की है, अनुवर्तिनी है, धर्मकामी है, बाँझ नहीं है, कुलीन है, सदाचारिणी है, पतिव्रता है –वह स्त्रियों के विषय में उसका 'मंगल' है। इससे उसकी रक्षा होती है।

(6) यशस्वी, भूतपति राजा जिसके बारे में यह जानता है कि यह पवित्र है, पराक्रमी है, द्वैत – भाव रहित है तथा मेरा सुहृदय है। यह उसका 'मंगल' है। यही उसकी रक्षा करता है।

(7) श्रद्धावान, प्रसन्नचित्त, संतुष्ट मन से अन्नपान, माला, गन्ध तथा लेप दान करता है, वह स्वर्ग सम्बन्धी 'मंगल' है यही उसकी रक्षा करता है।

(8) वयोवृद्ध, सम्यक् चर्य्या से पूजित, सत्पुरुष, बहुश्रुत, शीलवान ऋषिगण जिस आर्य धर्म से पवित्र होते हैं, वह अरहतों में 'मंगल' है। इसी से उसकी रक्षा होती है।

इस प्रकार बौद्ध आचारशास्त्र में, विश्व शांति व कल्याण के लिए अनेक नैतिक गुणों के अभ्यास पर बल दिया गया है जो व्यक्ति के साथ–साथ समाज, संस्कृति व प्रकृति तीनों को संरक्षण प्रदान करने वाले तत्व हैं। मानवीय धर्म का पालन विश्व के संरक्षण की दिशा में उठाये जाने वाले कदमों में पहला कदम है। 'चित्त क्लेश' से मुक्त होकर ही मानव अपने व विश्व के धर्म को बचा सकता है।